चंद्र मोहन

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

8 अगस्त, 1966

[के. सुब्बा राव, सी.जे., एम. हिदायतुल्ला, एस.एम. सिकरी, वी. रामास्वामी और जे. एम. शेलट, जे.जे.]

भारत का संविधान, 1950, अनुच्छेद 233 से 237 की व्यापकता-"संघ या राज्य की सेवा"- यदि इसमें कोई सेवा या केवल न्यायिक सेवा शामिल है।

भारत का संविधान, 1950, अनुच्छेद 132 और 133-सभी उत्तरदाताओं के खिलाफ दायर अपील-कुछ उत्तरदाताओं के खिलाफ अपील करने की अनुमति जो उच्च न्यायालय द्वारा नहीं दी गई है, लेकिन प्रमाण-पत्र भामक है, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विशेष अनुमति प्रदान की गई।

उत्तर प्रदेश राज्य में जिला न्यायाधीशों की भर्ती की प्रक्रिया संविधान के अनुच्छेद 309 के अधीन राज्यपाल द्वारा उत्तर प्रदेश उच्च न्यायिक सेवा नियमों द्वारा निर्धारित की गई थी। राज्यपाल चयन किए जाने वाले उम्मीदवारों की संख्या तय करता है, उम्मीदवारों की योग्यता निर्धारित करता है, उच्च न्यायालय आवेदनों के लिए बुलाता है, नियमों के तहत

गठित चयन समिति आवेदनों की जांच करती है, केवल उन व्यक्तियों को साक्षात्कार के लिए आमंत्रित करती है जिनके पास आवश्यक योग्यताएं हैं और वे उनमें से उपयुक्त व्यक्तियों का चयन करती है और उच्च न्यायालय को दो सूचियां भेजते हैं- एक मुख्य और एक पूरक सूची-उच्च न्यायालय राज्यपाल को सूचियों से उपयुक्त माने जाने वाले उम्मीदवारों के नाम प्रस्तुत करता है, और उसके बाद, राज्यपाल उक्त सूचियों से नियुक्तियां करता है। 1961-62 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार ने जिला न्यायाधीशों के संवर्ग में भर्ती के लिए 7 साल से अधिक समय से कार्यरत बार के सदस्यों और "न्यायिक अधिकारियों"जो कि कुछ राजस्व और मजिस्ट्रेट कर्तव्यों का निर्वहन करने वाले कार्यकारी विभाग के सदस्य थे, आवेदन आमंत्रित किए गए। नियमों में ऐसे "न्यायिक अधिकारियों"से जिला न्यायाधीशों की भर्ती का अधिकार दिया गया था। चयन समिति ने कुल 6 उम्मीदवारों का चयन किया, जिनमें 3 बार से और 3 "न्यायिक अधिकारियों"से थे और उनके नाम उच्च न्यायालय को भेजे। उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार ने समिति की रिपोर्ट की एक प्रति सरकार को भेजी जिसमें उल्लेख किया गया कि उच्च न्यायालय ने उक्त उम्मीदवारों के चयन को मंजूरी दे दी है। अपीलार्थी यू.पी. सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) के एक सदस्य और अन्य लोगों ने सरकार को उक्त चयन के अनुसार नियुक्तियां नहीं करने का निर्देश देने हेतु एक उचित रिट जारी करने के लिए उच्च न्यायालय में याचिका दायर की। याचिकाओं को खारिज कर दिया गया।

इस न्यायालय में अपील करने की अनुमति के आवेदन पर, उच्च न्यायालय ने कहा कि अधिवक्ताओं के मामले में संविधान की व्याख्या या सार्वजनिक महत्व के किसी भी प्रश्न के बारे में कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं उठता है, लेकिन "न्यायिक अधिकारियों"के मामले में ऐसे प्रश्न उठाए गए हैं। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने सामान्य शब्दों में एक प्रमाण-पत्र जारी किया कि यह मामला सर्वोच्च न्यायालय में अपील के लिए उपयुक्त था।

इस न्यायालय में अपील में "अधिवक्ता-भर्तियों"द्वारा यह तर्क दिया गया था कि इजाजत के आवेदन पर आदेश को देखते हुए, अपीलार्थी उच्च न्यायालय के निर्णय की शुद्धता का प्रचार नहीं कर सकता, जहाँ तक वह उनसे संबंधित है और अपीलार्थी ने तर्क दिया कि (i) जबकि अनुच्छेद 233 (1) के तहत संविधान के अनुसार राज्यपाल को संबंधित उच्च न्यायालय के परामर्श से नियुक्तियां करनी होती हैं। नियमों के तहत उन्हें वहां गठित चयन समिति से परामर्श करना होता है, और इसलिए संविधान द्वारा प्रदान किए गए एक के बजाय दो प्राधिकरणों के परामर्श से की गई नियुक्तियां अवैध थीं। वास्तव में नियमों के तहत उच्च न्यायालय केवल एक संचारक प्राधिकरण था, जबकि चयन समिति को वास्तविक सलाहकार निकाय बनाया गया था और (ii) राज्यपाल को "न्यायिक अधिकारियों" से जिला

न्यायाधीशों की नियुक्ति करने की कोई शक्ति नहीं थी, क्योंकि वे न्यायिक सेवा के सदस्य नहीं थे।

निर्धारण किया- (i) यह मामला अपील दायर करने में देरी को माफ करने के बाद अपीलार्थी एवं जहां तक इसका संबंध है "अधिवक्ता-भर्ती"से है, को इस न्यायालय में अपील करने के लिए विशेष अनुमति देने के लिए उपयुक्त था।

अपीलार्थी सामान्य शब्दों में उच्च न्यायालय द्वारा जारी प्रमाण-पत्र द्वारा गुमराह हुआ था, क्योंकि यह प्रमाण-पत्र पूरे मामले को शामिल करता प्रतीत होता है। यदि वह इजाजत देने के आदेश की बारीकी से जांच नहीं करने में गलत हुआ, तो अधिवक्ता प्रत्यर्थीगण प्रमाण-पत्र में संशोधन नहीं कराने में समान रूप से लापरवाही कर रहे थे।[82 बी]

(ii) ये नियम अनुच्छेद 233 (1) और (2) के संवैधानिक अधिदेशों का उल्लंघन करते हैं, इसलिए नियमों के साथ-साथ उनके तहत की गई नियुक्तियां अवैध थीं।

अनुच्छेद 233(1) के तहत राज्यपाल केवल उच्च न्यायालय के परामर्श से सेवाओं से किसी व्यक्ति को जिला न्यायाधीश के पद पर नियुक्त कर सकता है। उच्च न्यायालय से परामर्श न करके इस आदेश की अवज्ञा की जा सकती है और साथ ही, उच्च न्यायालय और अन्य व्यक्तियों से परामर्श करके, जिससे उनका मन उन अन्य व्यक्तियों से प्रभावित हो

सकता है जो उसे सलाह देने के हकदार नहीं हैं। वर्तमान मामले में नियमों में कहा गया है कि राज्यपाल चयन समिति के परामर्श से एक जिला न्यायाधीश की नियुक्ति कर सकता है, बशर्ते कि उच्च न्यायालय द्वारा एक प्रकार का वीटो किया जाए, जिसे राज्यपाल द्वारा स्वीकार या अस्वीकार किया जा सकता है। उच्च न्यायालय व्यावहारिक रूप से सूचियों के प्रेषण प्राधिकरण के पद तक सीमित है। यह केवल सूची में सभी या कुछ व्यक्तियों की सिफारिश करने से इन्कार करने का विवेक रखता है, लेकिन यह अन्य आवेदनों की जांच नहीं कर सकता है जिन्हें समिति द्वारा जांचा गया था या सूची में नहीं पाए गए व्यक्तियों की नियुक्ति के लिए सिफारिश नहीं कर सकता है। "अधिवक्ता-भर्तियों"के मामले में, राज्यपाल केवल अनुच्छेद 233(2) के तहत उच्च न्यायालय द्वारा अनुशंसित लोगों को नियुक्त कर सकता है, लेकिन नियमों के तहत, उच्च न्यायालय या तो समिति की सिफारिशों का समर्थन कर सकता है या केवल गतिरोध पैदा कर सकता है। (83 ए-डी; 85 एफ; 86 सी]

भले ही यह राज्यपाल के लिए खुला था कि वह अनुच्छेद 309 के तहत उच्च न्यायालय के अलावा अन्य निकायों के साथ परामर्श के लिए प्रावधान बनाए, लेकिन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उच्च न्यायालय के साथ परामर्श लेना आवश्यक है, और नियमों के तहत उच्च न्यायालय के साथ परामर्श संवैधानिक प्रावधान की एक खाली औपचारिकता और उपहास

है। राज्यपाल वास्तव में न तो उच्च न्यायालय से परामर्श करता है और न ही उसकी सिफारिशों पर कार्य करता है, बल्कि केवल समिति से परामर्श करता है या उसकी सिफारिशों पर कार्य करता है। [86 डी-एफ]

(iii) राज्यपाल द्वारा "न्यायिक अधिकारियों" से जिला न्यायाधीशों की भर्ती करने के लिए बनाए गए नियम भी असंवैधानिक हैं और "प्रत्यर्थीगण-न्यायिक अधिकारियों"की भर्ती सही नहीं थी।

भारतीय संविधान राज्यों में एक स्वतंत्र न्यायपालिका का प्रावधान करता है, और अधीनस्थ न्यायपालिका की स्वतंत्रता को प्रश्न से परे रखने के लिए, अनुच्छेद 50 में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने के लिए प्रावधान किया गया है और इस स्वतंत्रता को संरक्षित करने के लिए संविधान के अध्याय 6 में अनुच्छेद 233 से 237 मौजूद है। इन अनुच्छेदों के तहत जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति किसी भी राज्य में राज्य के राज्यपाल द्वारा की जाएगी और भर्ती के दो स्रोत हैंः (i) संघ या राज्य की सेवा और (ii) बार के सदस्य। "संघ या राज्य की सेवा"शब्दों का अर्थ संघ या राज्य की कोई सेवा नहीं है, बल्कि पूरे अध्याय VI के लिए संघ या राज्य की सेवा केवल संघ या राज्य की न्यायिक सेवा से संबंधित है। न्यायिक सेवा को अनुच्छेद 236(ख) में परिभाषित किया गया है। अनुच्छेद 236 (ख) के अधीन न्यायिक सेवा विशेष रूप से जिला न्यायाधीशों अथवा अन्य सिविल पद जो कि जिला

न्यायाधीश से निम्नतर स्तर के हैं के पद को भरने के लिए अभिप्रेत है। यह परिभाषा संपूर्ण है, क्योंकि "विशेष रूप से"और "अभिप्रेत"अभिव्यक्तियाँ इस तथ्य पर जोर देती हैं कि न्यायिक सेवा में केवल वे व्यक्ति शामिल होते हैं जो जिला न्यायाधीशों और अन्य सिविल न्यायिक पदों के पदों को भरने के लिए अभिप्रेत होते हैं और यह कि न्यायिक सेवा न्यायिक अधिकारियों की अनन्य सेवा है। जिला न्यायाधीशों के अलावा न्यायिक सेवा में व्यक्तियों की नियुक्ति के मामले में, वे राज्यपाल द्वारा उच्च न्यायालय और लोक सेवा आयोग के परामर्श से उनके द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार किए जाएंगे, लेकिन उच्च न्यायालय का सभी जिला न्यायालयों और उनके अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण है, जो कुछ निर्धारित सीमाओं के अधीन है। "न्यायिक सेवा"को विशिष्ट शब्दों में परिभाषित करते हुए, उस सेवा में नियुक्ति के लिए प्रावधान करने और सेवा का नियंत्रण उच्च न्यायालय की देखभाल को सौंपने के बाद, संविधान निर्माताओं ने राज्यपाल को नियुक्त करने के लिए एक व्यापक शक्ति प्रदान नहीं की है कि जिला न्यायाधीश के रूप में किसी भी सेवा से कोई भी व्यक्ति को नियुक्त किया जा सके। [89 बी, ई-90 डी; 91 ए]

अनुच्छेद 237 के तहत राज्यपाल अधिसूचित कर सकता है कि अनुच्छेद 233 से 236 तक कुछ संशोधनों या अपवादों के अधीन मजिस्ट्रेटों पर लागू होंगे और फिर उन्हें न्यायिक सेवा में एकीकृत किया

जाएगा जो जिला न्यायाधीशों के पद पर भर्ती के स्रोतों में से एक है। अनुच्छेद इस तथ्य पर जोर देता है कि जब तक इस तरह का एकीकरण नहीं किया जाता है, तब तक मजिस्ट्रेट अनुच्छेद 233 से 236 के दायरे से बाहर हैं। [91 बी.डी.]

इसके अलावा, जिला और सत्र न्यायाधीशों के पद मूल रूप से भारतीय सिविल सेवा के व्यक्तियों द्वारा भरे जाते थे। 1922 में, गवर्नर जनरल इन काउंसिल ने एक अधिसूचना जारी की जिसमें स्थानीय सरकार को प्रांतीय सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) के सदस्यों या बार के सदस्यों से भी नियुक्ति करने का अधिकार दिया गया। भारत सरकार अधिनियम, 1935 और उसके तहत नियमों के तहत, राज्यपाल को जिला न्यायाधीश के पद पर सिविल सेवा के सदस्य या प्रांत की न्यायिक सेवा के सदस्य या बार के सदस्य को नियुक्त करने की शक्ति दी गई थी, लेकिन नियम उन्हें जिला न्यायाधीश के आरक्षित पद पर न्यायिक सेवा के अलावा किसी अन्य सेवा से संबंधित व्यक्ति को नियुक्त करने का अधिकार नहीं देते थे।1947 में भारत के स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद, आई.सी.एस. में भर्ती बंद कर दी गई थी और जिला न्यायाधीशों की भर्ती केवल न्यायिक सेवा या बार से की जानी थी। कार्यपालिका के किसी सदस्य को जिला न्यायाधीश के रूप में पदोन्नत किए जाने का कोई मामला नहीं था। यदि संविधान के प्रारंभ में यही तथ्यात्मक स्थिति थी, तो इसके निर्माताओं को एक अप्रत्यक्ष तरीके

से इसे नष्ट करने का इरादे का जिम्मेदार ठहराना अनुचित है, जिन्होंने न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए इतनी सावधानी से प्रावधान किया था, जिला न्यायाधीशों के स्तर पर कार्यकारी विभागों से भर्ती की अनुमति देने से अधिक न्यायपालिका के अच्छे नाम के लिए हानिकारक कुछ भी नहीं हो सकता है। [91ई-92बी]

सिविल अपील न्यायनिर्णयः सिविल अपील सं. 1136 और 1638 1966

1965 के डब्ल्यू.पी.सं. 526 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय का 21 फरवरी, 1966 का आदेश के निर्णय से प्रमाण पत्र/विशेष अनुमति द्वारा अपील।

आर. के. गर्ग, एस. सी. अग्रवाल, एम. के. राममूर्ति और डी. पी. सिंह, अपीलार्थी के लिए (दोनों अपीलों में)।

सी. के. डाफ्टरी, अटॉर्नी-जनरल और ओ.पी. राणा, प्रत्यर्थी संख्या 1 (दोनों अपीलों में)।

बिशन नारायण और बी. पी. माहेश्वरी, प्रत्यर्थी संख्या 2-4 के लिए (दोनों अपीलों में)।

जे. पी. गोयल, प्रतिवादी संख्या 5 के लिए (दोनों अपीलों में)।

ओ. पी. वर्मा, प्रतिवादी संख्या 6 के लिए (दोनों अपीलों में)।

नौनीत लाल, मध्यस्थ के लिए (1966 के सी. ए. सं. 1136 में)

न्यायालय का निर्णय सुब्बा राव, सी.जे. द्वारा दिया गया था।

ये अपीलें सर्वप्रथम प्रमाण पत्र द्वारा और बाद में विशेष इजाजत द्वारा जिला न्यायाधीशों के संवर्ग में भर्ती के दायरे के क्षेत्र का सवाल उठाती है।

प्रकरण के संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि वर्ष 1961 के दौरान और 1962 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार ने उत्तर प्रदेश उच्च न्यायिक सेवा में दस रिक्तियों की भर्ती के लिए सात साल से अधिक के बैरिस्टर, अधिवक्ता, वकील, प्लीडर और "न्यायिक अधिकारियों"के लिए आवेदन मांगे। अभिव्यक्ति "न्यायिक अधिकारी"कार्यकारी विभाग के उन सदस्यों के लिए प्रयोक्ति थी, जो कुछ राजस्व एवं मजिस्ट्रेट कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं। यू.पी. उच्च न्यायिक सेवा नियमों, जिसे आगे नियम से संबोधित किया जावेगा, के अधीन निर्मित चयन समिति ने उक्त प्रावधानों के अनुसार उक्त आवेदकों में से छह उम्मीदवारों का चयन किया गया, जो कि उक्त सेवाओं के लिए उपयुक्त थे। प्रत्यर्थी संख्या 2 से 7 वे उम्मीदवार हैं, जिनका उक्त समिति द्वारा चयन किया गया है। प्रत्यर्थी संख्या 2, 3 और 4 अधिवक्तागण थे और प्रत्यर्थी संख्या 5, 6 और 7 "न्यायिक अधिकारी"थे। चयन समिति ने दो सूची जिनमें एक में तीन अधिवक्ताओं के नाम शामिल हैं और दूसरे में तीन"न्यायिक अधिकारियों"के नाम शामिल हैं, को उच्च न्यायालय को भेजा। 4 सितंबर, 1964 को इलाहाबाद के

रजिस्ट्रार ने उच्च न्यायालय ने चयन समिति की रिपोर्ट की एक प्रति सरकार के सचिव, उत्तर प्रदेश, लखनऊ को भेजी, जिसमें उन्होंने उल्लेख किया कि न्यायालय ने उक्त उम्मीदवारों के चयन को मंजूरी दे दी है, तत्पश्चात, अपीलार्थी, जो उत्तर प्रदेश सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) और जो उस समय जिला न्यायाधीश के रूप में कार्य कर रहे थे, और अन्य, जो अपीलार्थी के समान स्थित थे, ने अनुच्छेद 226 के तहत इलाहाबाद उच्च न्यायालय में उक्त चयन के अनुसरण में यू.पी. उच्च न्यायिक सेवा में नियुक्तियां नहीं करने के लिए सरकार को निर्देश देने के लिए रिट में याचिकाएं दायर कीं।

उक्त याचिकाओं की सुनवाई इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा की गई थी। विद्वान् न्यायाधीश, माथुर और टकरू, जे.जे. ने एक को छोड़कर सभी बिंदुओं पर सहमति जाहिर की कि बार से चयन सही था। जे.एन. टकरू, जे. ने व्यक्त किया कि संविधान अनुच्छेद 237 के तहत कोई अधिसूचना जारी नहीं की गई थी। इसलिए "न्यायिक अधिकारियों"के संवर्ग से चयन सही नहीं था। जिस सवाल पर मतभेद था ओक.जे. को भेजा गया था, और उक्त विद्वान् न्यायमूर्ति माथुर, जे. के विचार से सहमति व्यक्त की है कि दोनों स्रोतों से भर्ती अच्छी थी, जिसके परिणामस्वरूप रिट याचिकाएं खारिज कर दी गईं। अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष इस न्यायालय में अपील करने के लिए योग्यता का प्रमाण-पत्र जारी करने हेतु

आवेदन दायर किया। विद्वान् न्यायाधीशों, उनके आदेश के दौरान, यह देखा गया कि मामले के संबंध में अधिवक्ताओं के साथ-साथ "न्यायिक अधिकारियों"का कोई प्रमाण पत्र अनुच्छेद 133 (1)(a) के तहत नहीं प्रदान किया जा सकता है, क्योंकि विवाद के विषय को कोई धन मूल्य नहीं दिया जा सकता था और प्रमाण-पत्र केवल संविधान के अनुच्छेद 132 (1) या अनुच्छेद। 133 (1) (ग) के तहत जारी किया जा सकता है। यदि उक्त अनुच्छेदों की शर्तों का अनुपालन किया गया है, अधिवक्ताओं का मामला संविधान की व्याख्या या सार्वजनिक महत्व के किसी भी प्रश्न के बारे में कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं उठाता है, जिससे उपरोक्त दोनों वर्णित अनुच्छेद आकर्षित होते हों, लेकिन न्यायिक अधिकारियों का मामला ऐसा सवाल उठाता है, जिसे उक्त अनुच्छेद आकर्षित होते हैं। ये टिप्पणियां करने के बाद अदालत ने आवेदन को स्वीकार कर लिया और अनुच्छेद 132 (1) और अनुच्छेद 133 (1) (ग) संविधान के तहत आवश्यक प्रमाण-पत्र दिया। उस आदेश के अनुसार उच्च न्यायालय ने सामान्य शब्दों में एक प्रमाण पत्र जारी किया, जिसमें लिखा है:

> "यह प्रमाणित है कि मामला भारत के संविधान के अनुच्छेद 132 (1) और 133 (1) (सी) तहत अपील के लिए उपयुक्त है।"

उस प्रमाण पत्र के अनुसार 4 मार्च, 1966 को अपीलार्थी ने दोनों समूहों से संबंधित सभी छह उम्मीदवारों को प्रत्यर्थी के रूप में शामिल करते हुए इस न्यायालय में अपील याचिका दायर की। इसके बाद, 10 मार्च, 1966 को उन्होंने इस अदालत में एक और याचिका दायर की जिसमें कथन किया कि उच्च न्यायालय को प्रमाण-पत्र के दायरे को प्रतिबंधित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था और अपीलार्थी उच्च न्यायालय के समक्ष अभिवर्णित सभी आधारों पर उपार्थन करने का हकदार होगा। वैकल्पिक रूप उन्हें उच्च न्यायालय के आदेश के खिलाफ उसमें उल्लिखित अतिरिक्त आधारों को उठाने की अनुमति देने की प्रार्थना की।

श्री बिशन नारायण, अधिवक्ताओं के विद्वान वकील ने इस बात पर जोर दिया कि इस न्यायालय के समक्ष अधिवक्ताओं से संबंधित उच्च न्यायालय के आदेश के संबंध में कोई अपील नहीं थी इसलिए अपीलार्थी आदेश की शुद्धता पर तर्क नहीं कर सकता था जहां तक यह उनसे संबंधित है।

इस तर्क का औचित्य है, लेकिन हम संतुष्ट हैं कि अपीलार्थी सामान्य शब्दों में उच्च न्यायालय द्वारा जारी प्रमाण पत्र द्वारा गुमराह हो गया था। यदि केवल प्रमाण-पत्र पर ही गौर किया जाता है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह पूरे मामले को शामिल करता है जो कि उच्च न्यायालय के समक्ष था, लेकिन यदि इस प्रमाण-पत्र को उच्च न्यायालय द्वारा प्रमाण-पत्र जारी

करने हेतु आवेदन में पारित आदेश के साथ पढ़ा जाता है, तो यह इस तर्क का समर्थन करेगा कि उच्च न्यायालय का उद्देश्य प्रमाण-पत्र को केवल "न्यायिक अधिकारियों" से संबंधित मामले की हद तक प्रतिबंधित करना था। लेकिन जब तक प्रमाण पत्र बना हुआ था, तब तक अपीलार्थी का यह मानना कि प्रमाण-पत्र पूरे मामले पर लागू होता है, न्यायोचित था। यदि अपीलार्थी प्रमाण-पत्र के दायरे को समझने के लिए आदेश की बारीकी से जांच नहीं करने में गलत हुआ, तो प्रत्यर्थी ने प्रमाण-पत्र को जारी आदेश अनुरूप संशोधित नहीं कराने में समान रूप से लापरवाही की है, ताकि इसे आदेश के अनुरूप लाया जा सके। हस्तगत परिस्थितियों में हम इसे दाखिल करने में देरी को माफ करने के बाद अपीलार्थी को उच्च न्यायालय के आदेश के खिलाफ इस न्यायालय में अपील करने के लिए विशेष अनुमति देते हैं, जहां तक यह अधिवक्ताओं से संबंधित है।

अपीलार्थी के लिए विद्वान् वकील के तर्कों को निम्नलिखित पाँच शीर्षों के तहत आसानी से रखा जा सकता हैः (1) संविधान के अनुच्छेद 233 (1) के तहत राज्यपाल को संबंधित उच्च न्यायालय के परामर्श से जिला न्यायाधीशों के रूप में व्यक्तियों की नियुक्ति और उनकी नियुक्ति और पदोन्नति करनी होती है एवं इस तरह की नियुक्तियां करने से पहले राज्यपाल द्वारा संविधान के अनुच्छेद 309 के अन्तर्गत बनाए गए नियमों के तहत उक्त नियुक्तियां करने से पूर्व गठित चयन समिति से परामर्श लेना

आवश्यक है इसलिए संविधान द्वारा प्रदान किए गए एक के बजाय दो प्राधिकरणों के परामर्श से की गई नियुक्तियां अवैध थीं। (2) नियमों के प्रावधानों को निष्पक्ष रूप से पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि उच्च न्यायालय एक संचारक प्राधिकरण है, जबकि चयन समिति को वास्तविक सलाहकार निकाय बनाया गया है अर्थात् राज्यपाल को नियुक्तियां उच्च न्यायालय के साथ परामर्श करके जैसा कि यह संविधान के तहत होना चाहिए, न होकर नियमों के तहत गठित चयन समिति के साथ परामर्श करके करनी है। (3) राज्यपाल के पास न्यायिक अधिकारियों में से जिला न्यायाधीशों को नियुक्त करने की कोई शक्ति नहीं है क्योंकि वे न्यायिक सेवा के सदस्य नहीं हैं। (4) प्रत्यक्ष भर्ती के मामले में न्यायिक सेवा के सदस्यों का बहिष्कार या वैकल्पिक रूप से, जिला न्यायाधीशों के पद पर सीधी भर्ती के मामले में चयनित "न्यायिक अधिकारियों"की अनुमति संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 को उल्लंघन करता है और (5) नियुक्ति "सिविल और सत्र न्यायाधीशों"के पद पर होती है और वे संविधान के अनुच्छेद 236 द्वारा परिभाषित "जिला न्यायाधीश"नहीं होते हैं और इसलिए अनुच्छेद 233 के संदर्भ में उन पदों पर भर्ती सही नहीं है

पहला प्रश्न संविधान के अनुच्छेद 233 के प्रावधानों पर आधारित है।। अनुच्छेद 233 (1) में कहा गया हैः-

"किसी राज्य में जिला न्यायाधीश नियुक्त होने वाले व्यक्तियों की नियुक्ति तथा जिला न्यायाधीश की पदस्थापना और प्रोन्नति उस राज्य का राज्यपाल ऐसे राज्य के संबंध में अधिकारिता का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय से परामर्श करके करेगा।"

हम-इन अपीलों के उद्देश्य के लिए यह मान रहे हैं कि अनुच्छेद 233 के अधीन "राज्यपाल" मंत्रियों की सलाह पर कार्य करेगा अतः निर्णय में प्रयुक्त "राज्यपाल" पद का अर्थ है राज्यपाल मंत्रियों की सलाह पर कार्य करता है। संवैधानिक जनादेश स्पष्ट है, राज्यपाल द्वारा नियुक्ति की शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय के साथ अपने परामर्श से किया जाना है अर्थात् वह केवल उच्च न्यायालय के परामर्श से जिला न्यायाधीश के पद पर एक व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है। परामर्श का उद्देश्य स्पष्ट है। उच्च न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि वह "न्यायिक सेवा"या बार से संबंधित किसी व्यक्ति की जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने की उपयुक्तता या अन्यथा के संबंध में राज्यपाल से बेहतर जानता है, इसलिए राज्यपाल को एक निकाय के परामर्श से नियुक्ति करने का कर्तव्य दिया जाता है, जो कि उसे सलाह देने के लिए उपयुक्त प्राधिकारी है। राज्यपाल द्वारा इस आदेश की अवज्ञा दो तरीकों से की जा सकती है अर्थात् (i) उच्च न्यायालय से बिल्कुल भी परामर्श नहीं करके और (ii) उच्च न्यायालय और

अन्य व्यक्तियों से भी परामर्श करके। प्रथम मामले में वह सीधे संविधान के जनादेश का उल्लंघन करता है और दूसरे में वह अप्रत्यक्ष रूप से ऐसा करता है, क्योंकि उसका मन अन्य व्यक्तियों से प्रभावित हो सकता है जो उसे सलाह देने के हकदार नहीं हैं। संविधान के अन्य प्रावधानों से स्पष्ट होता है कि इस संवैधानिक जनादेश का नकारात्मक और सकारात्मक दोनों महत्व है। जहाँ कहीं भी संविधान ने एक से अधिक सलाहकार प्रदान करने का इरादा किया है, वहाँ उसने ऐसा कहा हैः अनुच्छेद 124 (2) और 217 (1) देखें और जहाँ कहीं भी संविधान ने किसी एक निकाय या व्यक्ति के परामर्श का प्रावधान किया है, वहाँ उसने ऐसा कहा हैः अनुच्छेद 222 व 124 (2) देखें और आगे जाकर जिन व्यक्तियों से परामर्श किया जाएगा और जिन व्यक्तियों से परामर्श किया जा सकता है, के बीच अंतर भी निर्धारित किया गया है। ये प्रावधान इंगित करते हैं कि परामर्श करने का कर्तव्य शक्ति के प्रयोग के साथ इतना एकीकृत है कि शक्ति का प्रयोग केवल उसमें निर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों के साथ परामर्श से किया जा सकता है। इसे अलग तरह से कहें, यदि ए को सी के परामर्श से बी को नियुक्त करने का अधिकार है, तो वह निर्धारित तरीके से शक्ति का प्रयोग नहीं करेगा यदि वह सी और डी के परामर्श से बी को नियुक्त करता है।

इसलिए, हम यह मानेंगे कि यदि नियम राज्यपाल को उच्च न्यायालय के अलावा किसी अन्य व्यक्ति या प्राधिकारी के परामर्श से किसी

व्यक्ति को जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करने का अधिकार देते हैं, तो उक्त नियुक्ति संविधान के अनुच्छेद 233(1) के प्रावधानों के अनुसार नहीं होगी।

इस संदर्भ में, वे नियम प्रासंगिक हैं जिनके तहत प्रश्नगत चयन किए गए थे। संबंधित नियमों को निम्न प्रकार से पढ़ा जा सकता हैः

"नियम 8. की जाने वाली नियुक्तियों की संख्या- (1) राज्यपाल नियम 5 में निर्दिष्ट भर्ती के दो स्रोतों में से प्रत्येक से चयन पर भर्ती की जाने वाली संख्या तय करेगा। नियम 9 से 12 में राज्य की उच्च न्यायिक सेवा में नियुक्ति के लिए उम्मीदवारके लिए योग्यता निर्धारित की गई है।

नियम 13. पदोन्नति द्वारा भर्ती - नियम 5(i) के तहत पदोन्नति द्वारा चयन के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया का पालन किया जाएगा: (सी) चयन एक समिति द्वारा किया जाएगा, जिसमें उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीश और सरकार के न्यायिक सचिव शामिल होंगे।

नियम 14. सीधी भर्ती- (1) सेवा में सीधी भर्ती के लिए आवेदन उच्च न्यायालय द्वारा आमंत्रित किए जाएंगे और निर्धारित प्रपत्र में किए जाएंगे जो न्यायालय के रजिस्ट्रार से प्राप्त किए जा सकते हैं।

(2) बैरिस्टरों, अधिवक्ताओं, वकीलों या प्लीडरों द्वारा आवेदन संबंधित जिला न्यायाधीश के माध्यम से प्रस्तुत किए जाएंगे और उक्त आवेदन के साथ आयु, चरित्र, राष्ट्रीयता और निवास, कानूनी व्यवसायी के रूप में

कार्यकाल के प्रमाण-पत्र और ऐसे अन्य दस्तावेज, जो न्यायालय द्वारा इस संबंध में निर्धारित किए जावें, सम्मिलित होंगे। न्यायिक अधिकारियों के आवेदन इन नियमों के नियम 5 के खंड 2(बी) में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार प्रस्तुत किए जाने चाहिए। जिला न्यायाधीश या अन्य अधिकारी जिसके माध्यम से आवेदन प्रस्तुत किया गया है, वह आवेदन के साथ आवेदक के चरित्र और सेवा में नियुक्ति के लिए उपयुक्तता का अपना अनुमान न्यायालय को भेजेगा।

नियम 15. साक्षात्कार-(1) चयन समिति, न्यायालय द्वारा प्राप्त आवेदन की जांच करेगी, और ऐसे उम्मीदवारों से अपेक्षा करेगी जो इन नियमों के तहत सेवा में नियुक्ति के लिए सबसे योग्य लगते हैं, साक्षात्कार के लिए समिति के समक्ष उपस्थित हों। कानूनी व्यवसायियों में से उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए अपना खर्च स्वयं वहन करना होगा।

(2) किसी उम्मीदवार की योग्यता का आकलन करते समय चयन समिति उसकी पेशेवर क्षमता, चरित्र, व्यक्तित्व, शारीरिक गठन और उसके रिकॉर्ड और साक्षात्कार में दर्शाए अनुसार सेवा में नियुक्ति के लिए सामान्य उपयुक्तता का उचित ध्यान रखेगी।

नियम 17. अभ्यर्थियों की प्रतीक्षा सूची-(1) चयन समिति सीधी भर्ती के लिए चयनित उम्मीदवारों की योग्यता के क्रम में एक सूची तैयार करेगी; बशर्ते कि यदि इस सूची में न्यायिक अधिकारियों में से दो या दो

से अधिक उम्मीदवार शामिल हैं, तो उनके नाम इस प्रकार व्यवस्थित किए जाएंगे कि न्यायिक अधिकारियों के रूप में उनकी परस्पर वरिष्ठता के अनुरूप हों। सूची में शामिल किए जाने वाले चयनित उम्मीदवारों की संख्या सीधी भर्ती के लिए रिक्तियों की संख्या जो कि राज्यपाल द्वारा नियम 8 के अनुसार प्रत्येक अवसर पर तय की गई है, के अनुरूप होंगी। अप्रत्याशित रिक्तियों को पूरा करने के लिए एक पूरक सूची तैयार की जाएगी।

(2) न्यायालय इस नियम के नियम 13 और खंड (1) के अनुसार तैयार की गई भर्ती के दो स्रोतों से सेवा में नियुक्ति के लिए उपयुक्त माने जाने वाले उम्मीदवारों की दो सूचियाँ राज्यपाल को प्रस्तुत करेगा।

नियम 19. नियुक्ति-(1) राज्यपाल नियम 13 एवं 17 के अंतर्गत तैयार की गई प्रतीक्षा सूची न्यायालय से प्राप्त होने पर आदेशानुसार उन सूचियों से अभ्यर्थियों को लेकर मूल रिक्तियां होने पर सेवा में नियुक्तियां करेंगे, जिसमें वे संबंधित सूचियों में खड़े हैं, बशर्ते सीधी भर्ती के लिए प्रतीक्षा सूची के मामले मेंनियम 7 और 18 के प्रावधान लागू हों और राज्यपाल संतुष्ट हों कि वे सेवा में नियुक्ति के लिए विधिवत योग्य हैं।

उक्त नियमों से यह देखा जाएगा कि राज्यपाल चयन किए जाने वाले उम्मीदवारों की संख्या पर निर्णय लेता है, उम्मीदवारों की योग्यता नियमों द्वारा निर्धारित की जाती है, न्यायालय सीधी भर्ती के लिए आवेदनों की मांग करता है, नियमों के तहत नियुक्त चयन समिति आवेदनों की जांच

करती है, केवल उन व्यक्तियों को साक्षात्कार लेती है जिनके पास आवश्यक योग्यताएं हैं और रिकॉर्ड और साक्षात्कार के आधार पर सेवा में नियुक्ति के लिए उनमें से उपयुक्त व्यक्तियों का चयन करती है, चयन समिति उच्च न्यायालय को दो सूचियां भेजती है, एक मुख्य सूची और दूसरी पूरक सूची, जो योग्यता के क्रम में व्यवस्थित की गई है और उच्च न्यायालय नियम 17 (1) के तहत तैयार की गई सूचियों में से सेवा में नियुक्ति के लिए उपयुक्त माने जाने वाले उम्मीदवारों के नाम राज्यपाल को प्रस्तुत करता है और उसके बाद राज्यपाल उक्त सूचियों में से नियुक्तियाँ करता है यदि वह संतुष्ट है कि वे सभी मामलों में नियुक्ति के लिए विधिवत योग्य हैं। नियमों से यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय व्यावहारिक रूप से चयन समिति द्वारा तैयार नियुक्ति के लिए उपयुक्त उम्मीदवारों की मुट्ठी के एक संचारण प्राधिकारी की स्थिति तक सिमित हो गया है। इसके पास एकमात्र विवेक यह है कि चयन समिति द्वारा भेजी गई सूचियों में शामिल सभी या कुछ व्यक्तियों की नियुक्ति के लिए सिफारिश करने से इनकार कर दिया जाए। यह चयन समिति द्वारा जांचे गए अन्य आवेदनों की जांच नहीं कर सकता है। यह सूची में नहीं पाए गए व्यक्तियों की नियुक्ति के लिए अनुशंसा नहीं कर सकता।

विद्वान् अटॉर्नी-जनरल ने तर्क दिया कि नियमों के तहत, उच्च न्यायालय सूची में पाए गए किसी भी नाम की सिफारिश करने से इनकार

कर सकता है और हर बार नई सूची भेजे जाने तक ऐसा करता रह सकता है, जब तक कि उसे उपयुक्त नाम नहीं मिल जाते। सूची में अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उच्च न्यायालय की ओर से अवरोधक रणनीति का यह सुझाव नियमों में खामियों का संकेत दे सकता है, लेकिन यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि नियमों का उद्देश्य परामर्श के मामले में उच्च न्यायालय के हाथों को बांधना है। इस तथ्य के अलावा कि उच्च न्यायालय से इस तरह की अवरोधक रणनीति का सहारा लेने की उम्मीद नहीं की जा सकती है, राज्यपाल आसानी से ऐसी स्थिति को रोक सकते हैं, क्योंकि वह चयन समिति द्वारा अनुशंसित व्यक्तियों को इस आधार पर नियुक्त कर सकते हैं कि उच्च न्यायालय ने उन्हें भेजने से इनकार कर दिया है और नाम परामर्श की संवैधानिक आवश्यकता का अनुपालन हो गया है। जबकि संवैधानिक प्रावधान कहते हैं कि राज्यपाल उच्च न्यायालय के परामर्श से सेवा से जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति कर सकते हैं, ये नियम कहते हैं कि राज्यपाल चयन समिति के परामर्श से नियुक्ति कर सकते हैं, जो उच्च न्यायालय द्वारा एक प्रकार के वीटो के अधीन हो सकता है, जो कि राज्यपाल द्वारा स्वीकार किया जाए या अनदेखा किया जा सकता है।

जिला न्यायाधीशों के बार से सीधे भर्ती किए गए के मामले में स्थिति और भी खराब है। संविधान के अनुच्छेद 233 (2) के तहत राज्यपाल केवल उच्च न्यायालय द्वारा अनुशंसित अधिवक्ताओं को ही उक्त

सेवा में नियुक्त कर सकता है, लेकिन नियमों के तहत, उच्च न्यायालय या तो समिति की सिफारिशों का समर्थन कर सकता है या गतिरोध पैदा कर सकता है। इसलिए, प्रासंगिक नियम स्पष्ट रूप से संविधान के अनुच्छेद 233(1) और (2) के संवैधानिक आदेशों का उल्लंघन करते हैं, इसलिएअवैध हैं।

पहले प्रश्न पर चर्चा, कुछ हद तक, दूसरे प्रश्न को भी सम्मिलित करती है,दोनों प्रश्न आपस में अतिच्छादित हैं, जिस पर यह धारणा कि यह राज्यपाल के लिए खुला है कि वह अनुच्छेद 309 के तहत उच्च न्यायालय के अलावा अन्य निकायों के साथ परामर्श के लिए प्रावधान करे, फिर भी वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उच्च न्यायालय के साथ परामर्श से बच नहीं सकता है। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, नियम उच्च न्यायालय के साथ परामर्श एक खाली औपचारिकता है। राज्यपाल योग्यता निर्धारित करते हैं, उनके द्वारा नियुक्त चयन समिति उम्मीदवारों का चयन करती है और उच्च न्यायालय को उक्त समिति द्वारा तैयार की गई सूचियों में से सिफारिश करनी होती है। यह संवैधानिक प्रावधान का उपहास है। वस्तुतः राज्यपाल न तो उच्च न्यायालय से परामर्श करता है और न ही उसकी सिफारिशों पर कार्य करता है, बल्कि केवल चयन समिति से परामर्श करता है या उसकी सिफारिशों पर कार्य करता है। उस दृष्टिकोण से भी, प्रासंगिक नियम अवैध हैं और इसके तहत की गई नियुक्तियां गलत हैं।

उठाया गया तीसरा बिंदु दूरगामी महत्व का है। क्या राज्यपाल, संविधान के अनुरूप न्यायिक सेवा के अलावा किसी अन्य सेवा के व्यक्तियों को सीधे उच्च न्यायालय के परामर्श से जिला न्यायाधीशों के रूप में नियुक्त कर सकता है? क्या वह "न्यायिक अधिकारियों"को जिला न्यायाधीशों के रूप में नियुक्त कर सकता है? "न्यायिक अधिकारी"शब्द भ्रामक है। यह आम बात है कि वे सरकार की कार्यकारी शाखा से संबंधित हैं, हालांकि वे कुछ राजस्व और मजिस्ट्रेट कार्य करते हैं। जिस प्रासंगिक लेख पर दोनों पक्ष अपनी-अपनी दलीलों के समर्थन में भरोसा करते हैं, वह अनुच्छेद 233 है, जिसमें लिखा हैः

> "(1) किसी राज्य में जिला न्यायाधीश नियुक्त होने वाले व्यक्तियों की नियुक्ति तथा जिला न्यायाधीश की पदस्थापना और प्रोन्नति उस राज्य का राज्यपाल ऐसे राज्य के संबंध में अधिकारिता का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय से परामर्श करके करेगा।"
>
> "(2) वह व्यक्ति, जो संघ की या राज्य की सेवा में पहले से ही नहीं है, जिला न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए केवल तभी पात्र होगा जब वह कम से कम सात वर्ष तक अधिवक्ता या प्लीडर रहा है और उसकी नियुक्ति के लिए उच्च न्यायालय ने सिफारिश की है।"

जबकि अपीलार्थी के विद्वान् वकील का तर्क है कि उक्त अनुच्छेद को संविधान के भाग VI का अध्याय VI में सन्निहित अनुच्छेदों के समूह के साथ पढ़ा जाना चाहिए और उक्त प्रावधानों के इतिहास की पृष्ठभूमि में भी, यदि पढ़ा जाए, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि राज्यपाल केवल न्यायिक सेवा या बार से जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति कर सकते हैं, विद्वान् वकील दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण का तर्क है कि अनुच्छेद 233 सामान्य शब्दों में व्यक्त किया गया है और निर्माण या अन्यथा द्वारा उक्त अनुच्छेद के दायरे को प्रतिबंधित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

उक्त प्रावधानों की व्याख्या करने से पहले, यह याद रखना चाहिए कि व्याख्या का मौलिक नियम एक ही है चाहे कोई संविधान के प्रावधानों का अर्थ लगाए या संसद के किसी अधिनियम का अर्थात् न्यायालय को संविधान या अधिनियम, जैसा भी मामला हो, के शब्दों से व्यक्त इरादे का पता लगाना होगा, लेकिन, "यदि, फिर भी, दो व्याख्या संभव है तो न्यायालय को उसे अपनाना चाहिए जो संविधान के सुचारू और सामंजस्यपूर्ण कामकाज को सुनिश्चित करेगा और दूसरे को त्याग देगा जो बेतुकेपन को जन्म देगा या व्यावहारिक असुविधा को जन्म देगा या मौजूदा अच्छी तरह से स्थापित प्रावधानों को निरर्थक करेगा।"भारतीय संविधान, हालांकि यह शक्तियों के पृथक्करण के सख्त सिद्धांत को स्वीकार नहीं करता है, परंतु राज्यों में एक स्वतंत्र न्यायपालिका का प्रावधान करता है; यह

प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय का गठन करता है, उसके न्यायाधीशों की सेवा की संस्थागत शर्तों को निर्धारित करता है, उचित मामलों में सरकारों सहित सभी न्यायाधिकरणों को सीमा के भीतर रखने के लिए रिट जारी करने के लिए उसे व्यापक अधिकार क्षेत्र प्रदान करता है और उसे उस क्षेत्र की सभी न्यायालयों और न्यायाधिकरणों पर, जिस पर उसका अधिकार क्षेत्र है, लेकिन संविधान के निर्माताओं ने यह भी महसूस किया कि "यह भारत में अधीनस्थ न्यायपालिका है जो लोगों के सबसे करीब से संपर्क में आती है, और यह कम महत्वपूर्ण नहीं है, शायद वास्तव में और भी अधिक महत्वपूर्ण है कि उनकी स्वतंत्रता को सवालों को वरिष्ठ न्यायाधीशों के मामले से परे रखा जाना चाहिए में।"संभवतः कार्यपालिका से न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुरक्षित करने के लिए, संविधान ने अध्याय में अनुच्छेदों में "अधीनस्थ न्यायालय"शीर्षक के अंतर्गत भाग VI का अध्याय VI का एक समूह पेश किया, लेकिन जिस समय संविधान बना, उस समय अधिकांश राज्यों में मजिस्ट्रेट सीधे कार्यपालिका के नियंत्रण में थे। वास्तव में यह सामान्य ज्ञान है कि स्वतंत्रता-पूर्व भारत में एक जोरदार आंदोलन था कि न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग किया जाना चाहिए और यह आंदोलन इस धारणा पर आधारित था कि जब तक उन्हें अलग नहीं किया जाता, तब तक निचले स्तर पर न्यायपालिका की स्वतंत्रता एक उपहास होगी, इसलिए नीति निदेशक सिद्धांतों केअनुच्छेद 50 में कहा गया है कि राज्य की सार्वजनिक सेवाओं में न्यायपालिका को

कार्यपालिका से अलग करने के लिए राज्य कदम उठाएगा। सीधे शब्दों में कहें तो इसका मतलब है कि कार्यकारी नियंत्रण से मुक्त एक अलग न्यायिक सेवा होगी।

इस पृष्ठभूमि में यदि संविधान के निम्नलिखित प्रावधानों पर नजर डाली जाए तो उनमें विवादित अभिव्यक्तियों का अर्थ स्पष्ट हो जाएगा:

हम पहले ही अनुच्छेद 233 पर विचार कर चुके हैं।

अनुच्छेद 234.- जिला न्यायाधीशों से भिन्न व्यक्तियों की किसी राज्य की न्यायिक सेवा में नियुक्ति उस राज्य के राज्यपाल द्वारा, राज्य लोक सेवा आयोग से और ऐसे राज्य के संबंध में अधिकारिता का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय से परामर्श करने के पश्चात् और राज्यपाल द्वारा इस निमित बनाए गए नियमों के अनुसार की जाएगी।

अनुच्छेद 235. जिला न्यायालय और उनके अधीनस्थन्यायालय का नयंत्रण, जिसके अंतगर्त राज्य की न्यायिक सेवा के व्यक्तियों और जिला न्यायाधीश के पद से अवर किसी पद को धारण करने वाले व्यक्तियों की पदस्थापना,पदोन्नति और उनको छुट्टी देना है, उच्च न्यायालय में निहित होगा, किंतु इस अनुच्छेद की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह ऐसे किसी व्यक्ति से उसकेअपील के अधिकार को छीनती है जो उसकी सेवा की शर्तों का विनियमन करने वाली विधि के अधीन उसे है या उच्च न्यायालय को इस बात के लिए प्राधिकृत करती है किवह उससे ऐसी

विधि के अधीन विहित उसकी सेवा की शर्तों के अनुसार व्यवहार न करकेअन्यथा व्यवहार करे।

अनुच्छेद 236. इस अध्याय में-

(क) "जिला न्यायाधीश" पद के अंतर्गत नगर सिविल न्यायालय का न्यायाधीश, अपर जिला न्यायाधीश, संयुक्त जिला न्यायाधीश, सहायक जिला न्यायाधीश, लघुवाद न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश, मुख्य प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट, अपर मुख्य प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट, सेशन न्यायाधीश, अपर सेशन न्यायाधीश और सहायक सेशन न्यायाधीश हैं।

(बी) "न्यायिक सेवा" पद से ऐसी सेवा अभिप्रेत है, जो अनन्यतः ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बनी है, जिनके द्वारा जिला न्यायाधीश के पद का और जिला न्यायाधीश के पद से अवर अन्य सिविल न्यायिक पदों का भरा जाना आशयित है।

अनुच्छेद 237.राज्यपाल, लोक अधिसूचना द्वारा निदेश दे सकेगा कि इस अध्याय के पूर्वगामी उपबंध और उनके अधीन बनाए गए नियम ऐसी तारीख से, जो वह इस निमित नियत करे, ऐसे अपवादों और उपांतरणों के अधीन रहते हुए, जो ऐसी अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किए जाएं, राज्य में किसी वर्ग या वर्गों के मजिस्ट्रेटों के संबंध में वैसे ही लागूहोंगे जैसे वे राज्य की न्यायिक सेवा में नियुक्त व्यक्तियों के संबंध में लागू होते हैं।

उक्त प्रावधानों का सार इस प्रकार बताया जा सकता है: किसी भी राज्य में जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति, और उनकी पोस्टिंग और पदोन्नति राज्य के राज्यपाल द्वारा की जाएगी। भर्ती के दो स्रोत हैंअर्थात् (i) संघ या राज्य की सेवाऔर (ii) बार के सदस्य। पहले स्रोत के उक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति उच्च न्यायालय के परामर्श से की जाती है और दूसरे स्रोत के न्यायाधीशों की नियुक्ति उच्च न्यायालय की सिफारिश पर की जाती है, लेकिन जिला न्यायाधीशों के अलावा न्यायिक सेवा में व्यक्तियों की नियुक्ति के मामले में, उन्हें राज्य के राज्यपाल द्वारा उच्च न्यायालय और लोक सेवा आयोग के परामर्श से बनाए गए नियमों के अनुसार किया जाएगा, लेकिन उच्च न्यायालय का सभी जिला अदालतों और उसके अधीनस्थ अदालतों पर कुछ निर्धारित सीमाओं के अधीन नियंत्रण होता है।

अभी तक कोई विवाद नहीं है, लेकिन असली विवाद इस सवाल पर है कि क्या राज्यपाल न्यायिक सेवा के अलावा अन्य सेवाओं के व्यक्तियों को जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त कर सकते हैं; कहने का तात्पर्य यह है कि क्या वह किसी ऐसे व्यक्ति को जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त कर सकता है जो पुलिस, उत्पाद शुल्क, राजस्व या ऐसी अन्य सेवा में है? इस स्थिति की स्वीकृति हमें स्वतंत्रता-पूर्व के दिनों में ले जाएगी और वह भी रियासतों में मौजूद स्थितियों में। रियासतों में पुलिस और अन्य विभागों से न्यायिक सेवा में नियुक्तियाँ होती रहती थीं। यह संविधान की

सुव्यवस्थित योजना और इसके अंतर्निहित सिद्धांत कि न्यायपालिका एक स्वतंत्र सेवा होगी, में भी कटौती करेगा। निस्संदेह केवल अनुच्छेद 233(1) के अन्तर्गत यह तर्क दिया जा सकता है कि राज्यपाल किसी भी व्यक्ति को जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त कर सकता है, चाहे वह कानूनी रूप से योग्य हो या नहीं, यदि वह राज्य के तहत किसी भी सेवा से संबंधित है, लेकिनअनुच्छेद 233(1) जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में राज्यपाल की सामान्य शक्ति की घोषणा से अधिक कुछ नहीं है। यह नियुक्त किए जाने वाले उम्मीदवारों की योग्यता निर्धारित नहीं करता है या उन स्रोतों को इंगित नहीं करता है जिनसे भर्ती की जानी है, लेकिन भर्ती के स्रोत अनुच्छेद(2) में दर्शाए गए हैं। तत्संबंधी अनुच्छेद के तहत (2)अनुच्छेद 233 में दो स्रोत दिए गए हैं, जो कि (i) संघ या राज्य की सेवा में व्यक्तिऔर(ii) वकील या प्लीडर। क्या यह कहा जा सकता है किसंविधान के भाग VI के अध्याय VI में "संघ या राज्य की सेवा"का मतलब संघ या राज्य की कोई सेवा है या इसका मतलब संघ या राज्य की न्यायिक सेवा है? ढांचाअर्थात्अधीनस्थ न्यायालयों से संबंधित अध्याय, जिसमें अभिव्यक्ति "सेवा"यह इंगित करती है कि उसमें उल्लिखित सेवा न्यायालयों से संबंधित सेवा है। वह अलग अनुच्छेद 236(बी)अभिव्यक्ति "न्यायिक सेवा"को परिभाषित करता है, जिसका अर्थ है एक ऐसी सेवा जिसमें विशेष रूप से जिला न्यायाधीश के पद और जिला न्यायाधीश के पद से नीचे के अन्य सिविल न्यायिक पदों को भरने के लिए इच्छुक

व्यक्ति शामिल हों यदि यह परिभाषा अनुच्छेद 236 में प्रकट होने के बजाय अनुच्छेद 233(2)से पहले एक भाग के रूप में रखी जाए, तो इसमें कोई विवाद नहीं हो सकता कि अनुच्छेद 233(2)में "सेवा"का तात्पर्य केवल न्यायिक सेवा से हो सकता है। यह परिस्थिति कि "न्यायिक सेवा"की परिभाषा को बाद के अनुच्छेद में जगह मिलती है, जरूरी नहीं कि इससे विपरीत निष्कर्ष निकले। यह तथ्य कि अनुच्छेद 233(2) में अभिव्यक्ति "सेवा"का प्रयोग में किया गया है, जबकि अनुच्छे 234 व 235 में अभिव्यक्ति "न्यायिक सेवा"पाई गई है, यह इस प्रश्न का निर्णायक नहीं है कि अनुच्छेद 233(2)में अभिव्यक्ति "सेवा"है,न्यायिक सेवा के अतिरिक्त कोई अन्य सेवा है, क्योंकि पूरा अध्याय न्यायिक सेवा से संबंधित है। सेवा की परिभाषा अपने आप में संपूर्ण है। परिभाषा में दो अभिव्यक्तियाँ इस विचार को सामने लाती हैं कि न्यायिक सेवा में न्यायिक अधिकारियों का पदानुक्रम शामिल है जो सबसे निचले स्तर से शुरू होता है और जिला न्यायाधीशों तक समाप्त होता है। अभिव्यक्ति "विशेष रूप से"और "आशयपूर्ण"इस तथ्य पर जोर देते हैं कि न्यायिक सेवा में केवल जिला न्यायाधीशों और अन्य नागरिक न्यायिक पदों को भरने के लिए इच्छुक व्यक्ति शामिल हैं और यह न्यायिक अधिकारियों की विशिष्ट सेवा है। "न्यायिक सेवा"को विशिष्ट शब्दों में परिभाषित करने, उस सेवा में नियुक्तियों का प्रावधान करने और उक्त सेवा का नियंत्रण उच्च न्यायालय की देखरेख में सौंपने के बाद, विश्व संविधान के निर्माताओं ने राज्यपाल को

कोई व्यापक शक्ति प्रदान नहीं की है कि किसी भी सेवा के किसी भी व्यक्ति को जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करें।

अनुच्छेद 233(2) में अभिव्यक्ति "सेवा"का तात्पर्य राज्य के अधीन किसी भी सेवा से है,के तर्क के समर्थन में इस न्यायालय के फैसले रामेश्वर दयाल बनाम पंजाब राज्य[1]के न्यायनिर्णय को पेश किया गया है। उक्त मामले में प्रश्न यह था कि क्या जिस व्यक्ति का नाम पूर्वी पंजाब उच्च न्यायालय के अधिवक्ताओं की सूची में था क्या उसेजिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया जा सकता है। फैसले के दौरान एस.के. दास, जे. ने न्यायालय की ओर से बोलते हुए कहा:

> "अनुच्छेद 233 जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में एक स्व-निहित प्रावधान है। ऐसे व्यक्ति के लिए जो पहले से ही संघ या राज्य की सेवा में है, के लिए कोई विशेष योग्यता उप-अनुच्छेद (1) के तहत निर्धारित नहीं की गई है और राज्यपाल ऐसे व्यक्ति को संबंधित उच्च न्यायालय के परामर्श से जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त कर सकता है। ऐसे व्यक्ति के लिए जो पहले से ही सेवा में नहीं है, उसके लिए उप-अनुच्छेद (2) में एक योग्यता निर्धारित की गई है और केवल यह आवश्यक है कि वह कम से कम सात वर्ष तक अधिवक्ता या प्लीडर रहा है।"

यह परिच्छेद प्रासंगिक प्रावधानों के सारांश से अधिक कुछ नहीं है प्रश्न यह है कि क्या अनुच्छेद 233(2)में अभिव्यक्ति "सेवा"संघ या राज्य की कोई भी सेवा है या नहीं उक्त मामले में विचार के लिए नहीं उठी और न ही न्यायालय ने उस पर कोई राय व्यक्त की है। इसलिए हम अनुच्छेद 233(2) में अभिव्यक्ति "सेवा"का अर्थ न्यायिक सेवा के रूप में परिभाषित करते हैं।

लेकिनकहा जाता है कि यह व्याख्या अनुच्छेद 237 की अनदेखी करता है। हम यह नहीं देखते कि अनुच्छेद 237 किस प्रकार अनुच्छेद 233(2) की व्याख्यामें सहायता करता है। अनुच्छेद 237 राज्यपाल को न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने में सक्षम बनाता है। इस अनुच्छेद के तहत, राज्यपाल अधिसूचित कर संविधान के अनुच्छेद 233, 234, 235 और 236 कोकुछ संशोधनों या अपवादों के अधीन मजिस्ट्रेटों पर लागू कर सकता है। उदाहरण के लिएयदि राज्यपाल ऐसा अधिसूचित करते हैं किउक्त मजिस्ट्रेट न्यायिक सेवा के सदस्य बन जाएंगे, तो अनुच्छेद 234 में निर्धारित तरीके से उन्हें नियुक्त करना होगा। अनुच्छेद 235 के तहत वे उच्च न्यायालय के नियंत्रण में होंगे और उन्हें अनुच्छेद 233(1) के तहत राज्यपाल द्वारा उन्हें जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया जा सकता है। इसे अलग ढंग से कहें तो, फिर उन्हें न्यायिक सेवा में एकीकृत किया जाएगा जो जिला न्यायाधीशों के पद पर भर्ती के स्रोतों में से एक है।

दरअसल,अनुच्छेद 237 इस तथ्य पर जोर देता है कि जब तक ऐसा एकीकरण नहीं हो जाता, तब तक मजिस्ट्रेट उक्त प्रावधानों के दायरे से बाहर हैं। उक्त दृष्टिकोण स्वतंत्र न्यायपालिका के संवैधानिक विषय के अनुरूप है और इसके विपरीत दृष्टिकोण एक प्रतिगामी कदम को स्वीकार करता है।

उक्त प्रावधानों का इतिहास भी उक्त निष्कर्ष का समर्थन करता है। मूल रूप से जिला एवं सत्र न्यायाधीशों और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीशों के पद भारतीय सिविल सेवा के व्यक्तियों द्वारा भरे जाते थे। 1922 में गवर्नर-जनरल-इन-काउंसिल ने एक अधिसूचना जारी की, जिसमें स्थानीय सरकार को प्रांतीय सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) के सदस्यों या बार के सदस्यों से उक्त सेवा में नियुक्तियाँ करने का अधिकार दिया गया। धारा 246(1) और धारा 251 भारत सरकार अधिनियम, 1935 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए,भारत के लिए राज्य सचिव ने आरक्षित पद (भारतीय सिविल सेवा) नियम, 1938 शैली के नियम बनाए। उन नियमों के तहतराज्यपाल को एक जिला न्यायाधीश के पद पर प्रांत की न्यायिक सेवा या बार का सदस्य की नियुक्ति की शक्ति दी गई थी। हालाँकिउक्त अधिनियम की धारा 254(1) को अनुच्छेद 233(1) में निहित शब्दों के समान सामान्य शब्दों में शामिल किया गया था। उक्त नियम उन्हें जिला न्यायाधीश के आरक्षित पद पर न्यायिक सेवा के अलावा किसी अन्य सेवा

से संबंधित व्यक्ति को नियुक्त करने का अधिकार नहीं देते हैं। भारत को स्वतंत्रता मिलने तकस्थिति यह थी कि जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा तीन स्रोतों से की जाती थी- (i) भारतीय सिविल सेवा, (ii) प्रांतीय न्यायिक सेवाऔर (iii) बार, लेकिन 1947 में भारत को स्वतंत्रता मिलने के बादभारतीय सिविल सेवा में भर्ती बंद कर दी गई और भारत सरकार ने निर्णय लिया कि नव निर्मित भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यों को न्यायिक पद नहीं दिए जाएंगे। उसके बाद जिला न्यायाधीशों की भर्ती केवल न्यायिक सेवा या बार से की गई है। कार्यकारिणी के किसी सदस्य को जिला न्यायाधीश के रूप में पदोन्नत करने का कोई मामला नहीं था।

यदि संविधान लागू होने के समय यही तथ्यात्मक स्थिति थी, तो संविधान के निर्माताओं को, जिन्होंने इतनी सावधानी से न्यायपालिका की स्वतंत्रता प्रदान की थी, अप्रत्यक्ष तरीके से उसे नष्ट करने का इरादा बताना अनुचित है। जिला न्यायाधीशों के स्तर पर कार्यकारी विभागों से भर्ती की अनुमति देने से अधिक न्यायपालिका के अच्छे नाम के लिए अधिक हानिकारक क्या हो सकता है? इसलिएसेवाओं का इतिहास भी हमारी व्याख्या की अनुच्छेद 233(2) में अभिव्यक्ति "सेवा"का तात्पर्य केवल न्यायिक सेवा से हो सकता है, का समर्थन करता है।

उपरोक्त कारणों सेहम मानते हैं कि राज्यपाल द्वारा "न्यायिक अधिकारियों"में से जिला न्यायाधीशों की भर्ती करने का अधिकार देने वाले नियम असंवैधानिक हैं और इसलिएइस कारण से प्रत्यर्थीगण 5, 6 और 7 की नियुक्ति भी सही नहीं थी।

इस दृष्टि से अंतिम दो प्रश्नों पर अपना विचार व्यक्त करना आवश्यक नहीं है।

परिणामस्वरूप, हम मानते हैं कि जिला न्यायाधीशों की भर्ती के लिए प्रदान करने वाले यू.पी. उच्च न्यायिक सेवा नियम संवैधानिक रूप से अमान्य हैं और इसलिएइसके तहत की गई नियुक्तियां अवैध थीं। हम उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द करते हैं और प्रथम प्रत्यर्थी को उक्त नियमों के तहत किए गए चयनों के अनुसरण में यू.पी. उच्च न्यायिक सेवा में सीधी भर्ती द्वारा कोई नियुक्ति नहीं करने का परमादेश जारी करते हैं। अंतिम प्रत्यर्थी अपीलकर्ता की लागत का भुगतान करेगा। अन्य प्रत्यर्थीगण अपनी लागत स्वयं वहन करेंगे।

वी.पी.एस. अपील की अनुमति दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास'की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी लोकेश पडिहार (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।